झारखंड उच्च न्यायालय रांची

सिविल रिट याचिका सं. **2935/2011**

श्रीकांत कैबर्ट

याचिकाकर्ता

बनाम

1. झारखण्ड राज्य
2. मुख्य सूचना आयोग, कार्यालय- इंजीनियरिंग छात्रावास, डाकघर- धुर्वा, थाना- जगरनाथपुर, जिला-रांची

3.शोएब अंसारी .... .

विरोधी पक्ष

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री सुजीत नारायण प्रसाद

याचिकाकर्ता के लिए: श्री अभिनय कुमार, अधिवक्ता
विरोधी पक्ष के लिए: श्री संजय पिपरावाल, अधिवक्ता
श्री राकेश रंजन, अधिवक्ता

14/दिनांक: 08.12.2023

1. यह याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत है, जिसके द्वारा सूचना आयुक्त द्वारा 12.05.2011 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके अनुसार सूचना के अधिकार अधिनियम (जिसे आगे अधिनियम 2005 कहा जाएगा) की धारा 20(1) के तहत ₹25,000/- का दंड लगाया गया है।

2. याचिका में प्रस्तुत संक्षिप्त तथ्यों को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है:

3. याचिकाकर्ता का कहना है कि वह चंदन कियारी, मछुआरा, सहकारी समिति लिमिटेड का सचिव था, जो झारखंड सहकारी समितियों अधिनियम, 1935 के तहत पंजीकृत है। याचिकाकर्ता को 23.08.2010 को जिला सहकारी अधिकारी सह सार्वजनिक सूचना अधिकारी द्वारा जारी पत्र संख्या 422 प्राप्त हुआ। उक्त पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि विरोधी पक्ष संख्या 3 ने 12 बिंदुओं पर जानकारी मांगी है और चूंकि मांगी गई जानकारी उस सहकारी समिति से संबंधित है, जिसका याचिकाकर्ता सचिव है, इसलिए उसे मांगी गई जानकारी प्रदान करने के लिए निर्देशित किया गया।

4. 23.08.10 को शिक्षित सूचना आयुक्त द्वारा पारित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता को बिना किसी नोटिस के सार्वजनिक सूचना अधिकारी के रूप में माना गया कि उसे ऐसा क्यों नहीं घोषित किया जाए और उसे विरोधी पक्ष संख्या 3 द्वारा मांगी गई जानकारी प्रदान करने के लिए निर्देशित किया गया।

5. जिला सहकारी अधिकारी, बोकारो के निर्देशों और शिक्षित सूचना आयुक्त के आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता ने विरोधी पक्ष संख्या 3 द्वारा मांगी गई जानकारी प्रदान की। याचिकाकर्ता सूचना आयुक्त के समक्ष उपस्थित हुआ और आयुक्त को सूचित किया कि मांगी गई जानकारी विरोधी पक्ष संख्या 3 को प्रदान की जा चुकी है। इसके अलावा, याचिकाकर्ताने यह दिखाने के लिए डाक रसीद प्रस्तुत की कि जानकारी को विरोधी पक्ष संख्या 3 के पते पर रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेजा गया था, लेकिन विरोधी पक्ष संख्या 3 उपस्थित नहीं हुआ और इसलिए उस दिन अपील का निपटारा नहीं हो सका।

6. याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि वह इस विश्वास में था कि उसने पहले ही आयुक्त को सूचित कर दिया था कि जानकारी पहले ही विरोधी पक्ष संख्या 3 को प्रदान की जा चुकी है और इसे विरोधी पक्ष संख्या 3 के डाक पते पर भेजा गया था, इसलिए और कुछ करने की आवश्यकता नहीं थी।

7. याचिकाकर्ता बाद की तारीखों पर सूचना आयुक्त के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ।

8. अचानक याचिकाकर्ता को जिला सहकारी अधिकारी, बोकारो द्वारा पत्र संख्या 231 दिनांक 01.06.2011 के माध्यम से सूचित किया गया कि अपील मामला संख्या 2528/2010 का निपटारा सूचना आयुक्त द्वारा किया गया है और उस पर ₹25,000/- का दंड लगाया गया है। उक्त पत्र में याचिकाकर्ता से कहा गया कि वह ₹25,000/- की राशि सरकारी खजाने में जमा करे और जिला सहकारी अधिकारी, बोकारो के समक्ष चालान की प्रति प्रस्तुत करे।

9. याचिकाकर्ता का कहना है कि जब वह सूचना आयुक्त के समक्ष उपस्थित हुआ और यह तथ्य बताया कि मांगी गई जानकारी पहले ही प्रदान की जा चुकी है, लेकिन उसे सूचना आयुक्त से अगली सुनवाई की तारीख का कोई नोटिस नहीं मिला और न ही उसे सूचित किया गया कि विरोधी पक्ष संख्या 3 ने उसके द्वारा प्रदान की गई जानकारी पर आपत्ति दर्ज की है।

12. 12.05.2011 को जिला सहकारी अधिकारी, बोकारो आयोग के समक्ष उपस्थित थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि शिक्षित आयोग के पास यह विकल्प था कि वह जिला सहकारी अधिकारी, बोकारो को निर्देशित करे कि याचिकाकर्ता को अगली सुनवाई की तारीख पर आयोग के समक्ष उपस्थित कराने का सुनिश्चित करें।

13. सूचना आयुक्त ने याचिकाकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए उपलब्ध उपायों का उपयोग किए बिना ₹25,000/- का दंड याचिका कर्तापर लगाया, इसलिए यह याचिका प्रस्तुत की गई है।

14. यह रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता, चंदनकियारी मात्स्य जीवि सहयोग समिति के सचिव के रूप में कार्य करते समय, शिकायतकर्ता, जानकारी मांगने वाले को जानकारी न देने के आरोप में आरोपित किया गया है।

15. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता की जिम्मेदारी उस जानकारी के संरक्षक के रूप में थी, जिसे मांगा गया था, और उसने विस्तृत जानकारी प्रदान नहीं की।

16. जब जानकारी मांगने वाले को आवश्यक जानकारी प्राप्त नहीं हुई, तो उसने अधिनियम 2005 की धारा 19(1) के तहत पहली अपील की और जानकारी न मिलने पर अधिनियम 2005 की धारा 19(3) के तहत राज्य सूचना आयोग के समक्ष दूसरी अपील की गई, जिसे राज्य सूचना आयोग द्वारा अपील संख्या 2528/2010 के रूप में पंजीकृत किया गया।

17. राज्य सूचना आयोग ने यह बताने के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया कि क्यों ₹25,000/- का दंड न लगाया जाए, क्योंकि जानकारी मांगने वाले द्वारा मांगी गई जानकारी प्रदान करने में प्रयास नहीं किया गया।

18. कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त जिम्मेदारी को अस्वीकार करते हुए कारण बताओ उत्तर दाखिल किया है।

19. मौखिक रूप से प्रस्तुत किया गया है कि कारण बताओ उत्तर पेपर बुक के साथ संलग्न नहीं किया गया। उपरोक्त दस्तावेज संबंधित सार्वजनिक सूचना अधिकारी को प्रदान किया गया था।

20. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि उसे अधिनियम 2005 की धारा 7 के प्रावधानों के अनुसार दस्तावेजों की आपूर्ति के लिए निर्धारित 30 दिनों की वैधानिक अवधि के भीतर संचार का विवरण प्राप्त नहीं हुआ।

21. राज्य सूचना आयोग ने उक्त उत्तर को स्वीकार नहीं किया और 12.05.2011 को आदेश पारित किया (जिसे चुनौती दी गई है) जिसमें ₹25,000/- का दंड लगाया गया, जो इस याचिका में चुनौती दी जा रही है।

22. याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि राज्य सूचना आयोग द्वारा पारित आदेश स्पष्ट अवैधता से ग्रस्त है।

23. यह तर्क दिया गया है कि आवश्यक जानकारी सूचना आयोग को प्रदान की गई थी, इसलिए याचिकाकर्तापर जिम्मेदारी डालने वाला आदेश उचित नहीं कहा जा सकता।

24. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता श्री संजय पिपरवाल ने चुनौती दिए गए आदेश का बचाव किया है। उन्होंने यह आधार लिया कि याचिकाकर्ता का यह कहना गलत है कि वह जानकारी मांगने वाले को दस्तावेज प्रदान करने के लिए बिल्कुल भी जिम्मेदार नहीं था। बल्कि, वह संबंधित समिति के सचिव के रूप में रिकॉर्ड का संरक्षक होने के नाते, उसे तत्काल सार्वजनिक सूचना अधिकारी को उक्त जानकारी प्रदान करनी थी ताकि सूचना मांगने वाले के

पक्ष में इसकी आपूर्ति की जा सके और अधिनियम 2005 की धारा 7 के तहत वैधानिक अनिवार्यता का पालन किया जा सके।

25. लेकिन ऐसा नहीं किया गया, इसलिए जब मामला आयोग के समक्ष गया, तब इसे सही पाया गया।

कारण बताओ नोटिस जारी किया गया ताकि अधिनियम 2005 की धारा 20(i) के तहत उन पर उचित आदेश पारित किया जा सके। कारण बताओ का उत्तर दिया गया। इसे संतोषजनक नहीं पाया गया, इसलिए ₹25,000/- का दंड लगाने वाला आदेश पारित किया गया।

27. इस न्यायालय ने पक्षों के लिए उपस्थित अधिवक्ताओं को सुना और याचिका में किए गए तर्कों और विरोधी पक्ष हलफनामे तथा राज्य सूचना आयोग द्वारा पारित आदेश की समीक्षा की।

28. अधिनियम 2005 के तहत जानकारी प्रदान करने की वैधानिक जिम्मेदारी सार्वजनिक सूचना अधिकारी पर डाली गई है।

29. धारा 7 सार्वजनिक सूचना अधिकारी पर जानकारी को 30 दिनों की वैधानिक अवधि के भीतर प्रदान करने की जिम्मेदारी डालती है।

30. अधिनियम 2005 की धारा 5(5) दस्तावेज के संरक्षक पर जिम्मेदारी डालती है कि वह उसे सार्वजनिक सूचना अधिकारी को प्रदान करे, यदि जानकारी मांगने वाले द्वारा मांगी गई जानकारी संरक्षक को सूचित की गई हो, तो उपरोक्त प्रावधान के अनुसार उसे तत्काल सार्वजनिक सूचना अधिकारी को उक्त दस्तावेज प्रदान करना होगा ताकि अधिनियम 2005 की धारा 7 के उद्देश्य को पूरा किया जा सके।

31. पहली अपील और दूसरी अपील का प्रावधान अधिनियम 2005 की धारा 19 के तहत प्रदान किया गया है।

32. पहली अपीलीय स्थिति विभाग के समक्ष होती है, जबकि दूसरी अपीलीय स्थिति स्वतंत्र आयोग, अर्थात् राज्य सूचना आयोग के समक्ष होती है, जैसा कि अधिनियम 2005 की धारा 19 की उपधारा (3) में प्रदान किया गया है।

33. राज्य सूचना आयोग को अधिनियम 2005 की धारा 20(1) (2) के तहत अधिकार प्रदान किए गए हैं।

34. अधिनियम 2005 की धारा 20 की उपधारा (1) राज्य आयोग को अधिकतम ₹25,000/- का दंड लगाने का अधिकार देती है, जबकि उपधारा (2) संबंधित सार्वजनिक कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्रवाई शुरू करने की सिफारिश करने के लिए है, जो अधिनियम 2005 की धारा 7 के तहत वैधानिक जिम्मेदारी के उल्लंघन में पाया जाता है।

35. यहां, मामले के दिए गए तथ्यों में, याचिकाकर्ता सहकारी समिति का सचिव था, और उससे जानकारी मांगी गई थी जिसे सूचना मांगने वाले को प्रदान किया जाना था।

36. यहां स्वीकार्य स्थिति यह है कि वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफलता के कारण समान जिम्मेदारी डाली जानी चाहिए।

37. स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता संबंधित सहकारी समिति का सचिव था और जब सूचना मांगने वाले द्वारा सार्वजनिक सूचना अधिकारी के समक्ष जानकारी मांगने के लिए आवेदन किया गया, तो यह जानकारी दस्तावेज के संरक्षक के रूप में याचिकाकर्ता को प्रदान की गई, जो रिकॉर्ड के अनुसार स्वीकार्य तथ्य है, जिसे इस न्यायालय को उसकी समीक्षा के लिए आदेश दिनांक 02.05.2023 के माध्यम से प्रदान किया गया था।

38. लेकिन याचिकाकर्ता ने सार्वजनिक सूचना अधिकारी को दस्तावेज या जानकारी नहीं दी ताकि इसे सूचना मांगने वाले को आगे भेजा जा सके।

39. इसके परिणामस्वरूप, सूचना मांगने वाले ने पहले अपील और उसके बाद आयोग के समक्ष दूसरी अपील दायर की। सूचना मांगने वाले ने वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफलता का आधार लिया।

40. सूचना आयोग ने संतुष्ट होने पर याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया, जिसमें पूछा गया कि क्यों ₹25,000/- का दंड वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफलता के कारण न लगाया जाए।

41. कारण बताओ नोटिस का उत्तर याचिकाकर्ता की ओर से दिया गया। कारण बताओ नोटिस का उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया, इसके बाद ₹25,000/- का दंड लगाने का आदेश पारित किया गया, जिसे इस याचिका में चुनौती दी गई है।

42. इस न्यायालय ने रिकॉर्ड की समीक्षा की और पाया कि जानकारी मांगने के लिए आवेदन 18.08.2010 को दायर किया गया था और पांच दिनों के भीतर, अर्थात् 23.08.2010 को, इसे संबंधित समिति के सचिव को सूचित किया गया था।

43. यह भी स्पष्ट होता है कि इसे 14.09.2010 को दिए गए स्वीकृति रसीद के अनुसार स्वीकार किया गया था।

44. याचिकाकर्ता द्वारा वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफलता का तथ्य स्वयं रिकॉर्ड से स्पष्ट है।

45. सूचना आयोग ने उपरोक्त तथ्य पर विचार करते हुए और वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफलता को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता को अधिनियम 2005 की धारा 20(1) के तहत ₹25,000/- के दंड के लिए जिम्मेदार पाया।

46. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 को संबंधित सूचना मांगने वाले को जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से लागू किया गया है, ताकि विभिन्न स्तरों पर प्राधिकरण द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता और पारदर्शिता बनाए रखी जा सके।

47. यदि वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफलता होती है, तो इसके लिए दंड के साथ जिम्मेदारी डालने के लिए विभिन्न प्रावधान किए गए हैं।

48. यदि याचिकाकर्ता सचिव होते हुए, जानकारी प्रदान करने के लिए अनुरोध प्राप्त करने के बाद जानकारी का विवरण प्रदान नहीं करते हैं, तो ऐसी परिस्थितियों में याचिकाकर्ताको वैधानिक जिम्मेदारी के निर्वहन में विफल माना जाएगा, जैसा कि अधिनियम 2005 की धारा 5(5) के तहत किया जाना था।

49. आयोग ने ऐसी परिस्थितियों में कारण बताओ नोटिस जारी किया और ₹25,000/- का दंड लगाया, जिसे इस न्यायालय के विचार से त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है, इसलिए प्रमाण पत्र जारी करने का आदेश नहीं दिया जा सकता।

50. प्रमाण पत्र जारी करने का सिद्धांत यह है कि रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि देखी जाए, इसके अलावा यदि आदेश न्याय क्षेत्र से बाहर है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन और अन्य** मामले में कहा है, **ए.आई.आर. 1964 सुप्रीम कोर्ट 477 में**, जहां पैराग्राफ संख्या 7 **में उनके माननीय न्यायधीशों ने निम्नलिखित** रूप से कहा है:-

> *"7. उच्च न्यायालयों के द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत प्रमाण पत्र जारी करने की न्याय क्षेत्र की सीमाओं के प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है और इस संबंध में सही कानूनी स्थिति अब संदेह से परे है। प्रमाण पत्र उन त्रुटियों को सुधारने के लिए जारी किया जा सकता है जो अधीनस्थ न्यायालयों या न्यायाधिकरणों द्वारा की गई हैं: ये वे मामले हैं जहां अधीनस्थ न्यायालयों या न्यायाधिकरणों द्वारा बिना न्याय क्षेत्र के आदेश पारित किए गए हैं, या इससे अधिक में, या न्याय क्षेत्र का प्रयोग न करने के परिणामस्वरूप। इसी प्रकार का प्रमाण पत्र तब भी जारी किया जा सकता है जब न्यायालय या न्यायाधिकरण अपने ऊपर दिए गए न्याय क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अवैध या अनुचित तरीके से कार्य करता है, जैसे कि वह किसी प्रभावित पक्ष को सुनवाई का अवसर दिए बिना किसी प्रश्न का निर्णय करता है, या जहां विवाद निपटाने में अपनाई गई प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ होती है।*
>
> *हालांकि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रमाण पत्र जारी करने का अधिकार एक पर्यवेक्षी अधिकार है और इसका प्रयोग करने वाला न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं रखता। यह सीमा आवश्यक रूप से यह अर्थ रखती है कि अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन के परिणामस्वरूप प्राप्त तथ्यों के निष्कर्ष को पुनः खोला या प्रश्नित नहीं किया जा सकता। कानून की एक स्पष्ट त्रुटि जो रिकॉर्ड पर स्पष्ट है, उसे*

प्रमाण पत्र द्वारा सुधारा जा सकता है, लेकिन तथ्य की त्रुटि, चाहे वह कितनी ही गंभीर क्यों न हो, उसे नहीं सुधारा जा सकता।

न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, यदि यह प्रदर्शित किया जाए कि उक्त निष्कर्ष दर्ज करते समय, न्यायाधिकरण ने स्वीकार्य और महत्वपूर्ण साक्ष्य को स्वीकार करने से गलत तरीके से इनकार किया, या गलत तरीके से अनुपयुक्त साक्ष्य को स्वीकार किया जिसने विवादित निष्कर्ष को प्रभावित किया, तो प्रमाण पत्र जारी किया जा सकता है। इसी प्रकार, यदि किसी तथ्य का निष्कर्ष बिना किसी साक्ष्य पर आधारित हो, तो इसे कानून की त्रुटि माना जाएगा जिसे प्रमाण पत्र द्वारा सुधारा जा सकता है।

हालांकि, इस श्रेणी के मामलों से निपटते समय, हमें हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किया गया तथ्य का निष्कर्ष प्रमाण पत्र के लिए कार्यवाही में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए गए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण साक्ष्य विवादित निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए अपर्याप्त या असंतोषजनक थे। किसी बिंदु पर पेश किए गए साक्ष्य की पर्याप्तता या संतोषजनकता और उक्त निष्कर्ष से निकाली गई तथ्य की व्याख्या न्यायाधिकरण की विशेष अधिकारिता में होती है, और ये बिंदु प्रमाण पत्र अदालत के समक्ष उठाए नहीं जा सकते।

इन्हीं सीमाओं के भीतर अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रमाण पत्र जारी करने का अधिकार वैध रूप से प्रयोग किया जा सकता है (हरि विष्णु कामत बनाम अहमद ईशाक, 1955-1 एससीआर 1104 : ((एस) एआईआर 1955 एससी 233); नागेंद्रनाथ बनाम पहाड़ी विभाग आयुक्त, 1958 एससीआर 1240 : (एआईआर 1958 एससी 398) और कौशल्या देवी बनाम बच्चितर सिंह, एआईआर 1960 एससी 1168)

51. इस संदर्भ में **हरि विष्णु कामत बनाम अहमद ईशाक और अन्य**, **एआईआर 1955 सुप्रीम कोर्ट 233** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख भी किया जा सकता है, जिसमें पैराग्राफ-21 में निम्नलिखित कहा गया है:-

".....'सर्टियोरारी' के चरित्र और दायरे और उन शर्तों के बारे में जिनके तहत इसे जारी किया जा सकता है। इस प्रश्न पर इस न्यायालय ने 'पैरी एंड कंप बनाम वाणिज्यिक कर्मचारी संघ, मद्रास, 'एआईआर 1952 एससी 179 (एल); 'वीरप्पा पिल्लई बनाम रमन एंड रमन लिमिटेड' एआईआर 1952 एससी 192 (एम); 'इब्राहिम अबूबकर बनाम कस्टोडियन जनरल ऑफ इवेक्यू प्रॉपर्टी नई

दिल्ली,' एआईआर 1952 एससी 319 (एन) और हाल ही में 'एआईआर 1954 एससी 440(सी) में विचार किया है। इन प्राधिकारियों के आधार पर, निम्नलिखित प्रस्तावनाएँ स्थापित की जा सकती हैं: (1)'सर्टियोरारी" न्याय क्षेत्र की त्रुटियों को सुधारने के लिए जारी किया जाएगा, जैसे जब एक अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण बिना न्याय क्षेत्र के कार्य करता है या इसके अधीन होता है, या इसका प्रयोग करने में विफल रहता है। (2) प्रमाण पत्र तब भी जारी किया जाएगा जब न्यायालय या न्यायाधिकरण अपनी निर्विवाद न्याय क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अवैध तरीके से कार्य करता है, जैसे जब यह प्रभावित पक्षों को सुनने का अवसर दिए बिना निर्णय करता है, या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। (3) प्रमाण पत्र जारी करने वाला न्यायालय पर्यवेक्षी और न कि अपीलीय अधिकार का प्रयोग करता है। इसका एक परिणाम यह है कि न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा प्राप्त तथ्यों के निष्कर्षों की समीक्षा नहीं करेगा, भले ही वे त्रुटिपूर्ण हों। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि जिस विषय पर न्यायालय का अधिकार होता है, उसे सही और गलत दोनों निर्णय देने का अधिकार होता है, और जब विधायिका उस निर्णय के खिलाफ अपील का अधिकार नहीं देती, तो यदि एक उच्चतर न्यायालय मामले को साक्ष्य पर फिर से सुनता है और अपने निष्कर्षों को 'सर्टियोरारी' में प्रतिस्थापित करता है, तो यह इसके उद्देश्य और नीति को विफल करेगा....."

52. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय में, "**सवर्ण सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य," (1976) 2 एससीसी 868** में, उनके माननीय न्यायधीशों ने अनुच्छेद 226 के तहत प्रमाण पत्र जारी करने की शक्ति पर चर्चा करते हुए पैराग्राफ संख्या 12 और 13 में निम्नलिखित कहा है:

"12. प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने से पहले, यह सामान्य सिद्धांतों को देखना उपयोगी होगा जो प्रमाण पत्र की न्याय क्षेत्र की सीमाओं को दर्शाते हैं। प्रमाण पत्र की न्याय क्षेत्र केवल अधीनस्थ न्यायालयों या न्यायाधिकरणों द्वारा की गई न्याय क्षेत्र की त्रुटियों को सुधारने के लिए प्रयोग की जा सकती है। प्रमाण पत्र केवल पर्यवेक्षी न्याय क्षेत्र के प्रयोग में जारी किया जा सकता है, जो अपीलीय न्याय क्षेत्र से भिन्न है। अनुच्छेद 226 के तहत विशेष अधिकार का प्रयोग करने वाला न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं रखता। जैसा कि इस न्यायालय ने सैयद याकूब के मामले में (उपरोक्त) बताया था.....

13.अधीनस्थ न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, प्रमाण पत्र केवल तब जारी किया जा सकता है जब उस निष्कर्ष को दर्ज करते समय, न्यायाधिकरण ने ऐसे साक्ष्य पर कार्य किया हो जो कानूनी रूप से अस्वीकार्य हो, या स्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार करने से इनकार किया हो, या यदि निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित न हो, क्योंकि ऐसे मामलों में त्रुटि कानून की त्रुटि के बराबर होती है। प्रमाण पत्र की न्याय क्षेत्र केवल उन मामलों तक सीमित होती है जहां अधीनस्थ न्यायालयों या न्यायाधिकरणों द्वारा उनके अधिकार क्षेत्र से अधिक आदेश पारित किए जाते हैं या उनके द्वारा उन्हें दिए गए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार करने के परिणामस्वरूप, या वे अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय अवैध या अनुचित तरीके से कार्य करते हैं जिससे गंभीर अन्याय होता है।"

53. इस न्यायालय का विचार है कि उपरोक्त स्थापित स्थिति को देखते हुए और यहां किए गए चर्चा के आधार पर, यह कोई ऐसा मामला नहीं है जहां प्रमाण पत्र जारी करने के लिए हस्तक्षेप का कोई आधार प्रस्तुत किया गया हो।

54. परिणामस्वरूप, वर्तमान याचिका विफल होती है और इसे खारिज किया जाता है।

55. लंबित अंतर्वर्ती आवेदन, यदि कोई हो, निपटाया जाता है।

(न्यायमूर्ति सुजीत नारायण प्रसाद)

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|